भविष्य की समृद्धि का नया मंत्र : कम उपभोग, अधिक सुख और स्वस्थ धरती

नेमित गाँव में आकार लेता क्लाइमेट सत्याग्रह आश्रम दुनिया को सिखा सकता है सीमित संसाधनों में आनंदपूर्ण जीवन जीने की कला

क्या किसी देश की समृद्धि उसके बड़े-बड़े शहरों, ऊँची इमारतों, महँगी गाड़ियों और करोड़ों की संपत्तियों से मापी जानी चाहिए? या फिर इस बात से कि वहाँ के नागरिक कितने स्वस्थ हैं, उन्हें साँस लेने के लिए कितनी स्वच्छ हवा मिलती है, पीने के लिए कितना शुद्ध पानी उपलब्ध है और वे कितने सुरक्षित तथा संतुष्ट जीवन का अनुभव करते हैं? यह प्रश्न आज इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गया है क्योंकि आधुनिक विकास की दौड़ में हमने भौतिक सुविधाएँ तो बहुत बढ़ा ली हैं, लेकिन जीवन को संभव बनाने वाले प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव भी उसी अनुपात में बढ़ा दिया है।

कल्पना कीजिए, दिल्ली जैसे किसी महानगर में रहने वाले व्यक्ति के पास करोड़ों रुपये की संपत्ति है। आलीशान मकान, आधुनिक सुविधाएँ और जीवन को आरामदायक बनाने वाले तमाम साधन हैं। लेकिन यदि एक दिन वहाँ की हवा इतनी प्रदूषित हो जाए कि साँस लेना मुश्किल हो जाए, पानी पीने योग्य न रहे और वातावरण स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा बन जाए, तो क्या वह व्यक्ति अपनी संपत्ति के बावजूद सुखपूर्वक रह पाएगा? संपत्ति का आर्थिक मूल्य भले बना रहे, लेकिन उस वातावरण में उसका उपयोग और उससे मिलने वाला सुख प्रभावित हो सकता है। कोरोना महामारी ने भी दुनिया को यह समझाया कि असाधारण परिस्थितियों में धन और सुविधाओं के बावजूद स्वस्थ वातावरण और सुरक्षित जीवन की आवश्यकता सबसे ऊपर आ जाती है।

आज हमें विकास की अपनी परिभाषा पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। हम लगातार अधिक उत्पादन, अधिक खरीदारी और अधिक उपभोग को प्रगति मानते आए हैं। बाजार भी हमारी इच्छाओं को लगातार नई आवश्यकताओं में बदलता रहता है। एक वस्तु खरीदने के बाद दूसरी वस्तु की इच्छा पैदा होती है। घर में पहले से मौजूद सुविधाओं के बावजूद हम नई सुविधाएँ जुटाते रहते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में ऊर्जा, पानी, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों की खपत बढ़ती जाती है। अंततः इन वस्तुओं के निर्माण से लेकर उनके उपयोग और निपटान तक पर्यावरण पर बोझ पड़ता है।

क्या हमने कभी सोचा है कि जिस वस्तु के बिना भी हमारा जीवन आराम से चल सकता है, उसे खरीदने और उपयोग करने में हम कितने संसाधन खर्च कर रहे हैं? क्या सुख का अर्थ अधिक वस्तुओं का स्वामित्व है, या अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को समझकर संतुलित जीवन जीना? इसी बुनियादी प्रश्न को लेकर मध्य प्रदेश के खरगोन जिले के नेमित गाँव में एक महत्त्वपूर्ण पहल आकार ले रही है।

आईआईटी बॉम्बे के पूर्व प्रोफेसर और ऊर्जा स्वराज यात्रा के प्रणेता प्रो. चेतन सिंह सोलंकी द्वारा शुरू की गई यह पहल क्लाइमेट सत्याग्रह आश्रम के रूप में विकसित होने जा रही है। इसका उद्देश्य केवल जलवायु परिवर्तन के बारे में जानकारी देना नहीं, बल्कि लोगों को ऐसी जीवनशैली का प्रशिक्षण देना है, जिसमें कम से कम उपभोग, कम से कम ऊर्जा की खपत और कम से कम प्रदूषण करते हुए भी सुखी, स्वस्थ और आनंदपूर्ण जीवन जिया जा सके।

26 नवंबर 2026 को खरगोन जिले के नेमित गाँव में इस आश्रम का भूमि पूजन एवं शिलान्यास संपन्न हुआ। इस अवसर पर देश के सभी 28 राज्यों और 8 केंद्रशासित प्रदेशों से एकत्रित मिट्टी आश्रम की नींव में समर्पित की गई। 11 राज्यों से आए 16 माटी दूतों ने स्वयं इस अवसर पर भाग लिया। पूजनीय श्री प्रभुजी नागर महाराज की उपस्थिति में आयोजित कार्यक्रम में 850 से अधिक लोगों ने सहभागिता की। देश के विभिन्न हिस्सों की मिट्टी को एक स्थान पर एकत्र करना इस विचार का प्रतीक था कि धरती सबकी साझा धरोहर है और उसके संरक्षण की जिम्मेदारी भी सबकी है।

प्रो. सोलंकी का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के लिए केवल सरकारों, उद्योगों और संस्थाओं को जिम्मेदार ठहराना पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमिका स्वीकार करनी होगी। जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि हमारी व्यक्तिगत जीवनशैली और उपभोग की आदतें भी जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हैं, तब तक समाधान अधूरा रहेगा। धरती सीमित है, इसलिए हमारा उपभोग भी सीमित होना चाहिए। यह बात सुनने में सरल लग सकती है, लेकिन इसके पीछे विकास और जीवन के प्रति एक बहुत व्यापक दृष्टिकोण छिपा हुआ है।

इसी दृष्टिकोण को व्यवहार में उतारने के लिए प्रो. सोलंकी का ‘ख’ सूत्र महत्त्वपूर्ण है—Avoid, Minimize, Generate। अर्थात पहले अनावश्यक उपभोग से बचें, फिर आवश्यक उपभोग को न्यूनतम करें और उसके बाद जितनी ऊर्जा की वास्तविक आवश्यकता रह जाए, उसका यथासंभव स्थानीय स्तर पर उत्पादन करें।



इस सूत्र की विशेषता यह है कि यह समाधान की शुरुआत ही हमारी अपनी आदतों से करता है। यदि दिन में पर्याप्त प्राकृतिक रोशनी उपलब्ध है तो अनावश्यक रूप से बिजली की लाइट क्यों जलाएँ? यदि थोड़ी दूरी पैदल तय की जा सकती है तो हर बार वाहन का उपयोग क्यों करें? यदि घर में उपलब्ध वस्तु से काम चल सकता है तो नई वस्तु खरीदने की आवश्यकता क्यों हो? यदि किसी उपकरण का उपयोग कम करके ऊर्जा बचाई जा सकती है तो केवल अधिक बिजली उत्पादन की बात क्यों करें? पहले आवश्यकता घटाना, फिर दक्षता बढ़ाना और उसके बाद बची हुई जरूरत के लिए स्वच्छ ऊर्जा की व्यवस्था करना इस विचार का मूल है।

यह दृष्टिकोण तकनीक और विकास का विरोध नहीं करता, बल्कि यह प्रश्न करता है कि क्या प्रत्येक नई सुविधा वास्तव में आवश्यक है? कई बार हम आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग केवल आदत, दिखावे या सामाजिक प्रतिस्पर्धा के कारण करते हैं। हमें यह समझना होगा कि संसाधनों की बचत केवल बिजली का स्विच बंद करने से नहीं होगी, बल्कि खरीदारी, यात्रा, खान-पान और वस्तुओं के उपयोग से जुड़ी हमारी पूरी जीवनशैली में बदलाव लाने से होगी।

इसी विचार को लोगों के दैनिक जीवन से जोड़ने के लिए पाँच सरल आदतों पर आधारित TUPEE जलवायु संकल्प भी अत्यंत उपयोगी है। इसमें पाँच ऐसे व्यवहार शामिल हैं जिन्हें कोई भी व्यक्ति अपनी दिनचर्या का हिस्सा बना सकता है।

T अर्थात Travel Less—अनावश्यक यात्राओं से बचना। जहाँ संभव हो पैदल चलना, साइकिल या सार्वजनिक परिवहन अपनाना। इससे ईंधन की खपत और प्रदूषण से होने वाले उत्सर्जन को कम करने में मदद मिलती है।

U अर्थात Use Items Wisely—वस्तुओं का समझदारी से उपयोग करना। किसी वस्तु को केवल कुछ समय इस्तेमाल करके छोड़ देने के बजाय उसका अधिकतम और लंबे समय तक उपयोग करना, मरम्मत करना और जहाँ संभव हो पुनः उपयोग में लाना।

P अर्थात Purchase Cautiously—सोच-समझकर खरीदारी करना। केवल आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदना और अनावश्यक खरीदारी से बचना। खरीदने से पहले स्वयं से पूछना कि क्या यह वस्तु वास्तव में जरूरी है?

E अर्थात Eat Carefully—खान-पान में सावधानी रखना। स्थानीय और मौसमी भोजन को प्राथमिकता देना तथा भोजन की बर्बादी रोकना। भोजन की थाली में बचा हुआ अन्न भी केवल भोजन की बर्बादी नहीं है, बल्कि उसके उत्पादन में लगी जमीन, पानी, ऊर्जा और श्रम की बर्बादी भी है।

दूसरा E अर्थात Eliminate Electricity Waste—बिजली की बर्बादी रोकना। आवश्यकता न होने पर लाइट, पंखे, एसी और अन्य विद्युत उपकरण बंद रखना तथा ऊर्जा का विवेकपूर्ण उपयोग करना।

इन पाँच आदतों का महत्त्व इस बात में है कि इनके लिए किसी बड़ी तकनीक, भारी निवेश या विशेष व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति अपने घर से ही शुरुआत कर सकता है। यदि लाखों-करोड़ों लोग इन पाँच आदतों को अपनाएँ तो व्यक्तिगत स्तर पर किए गए छोटे परिवर्तन सामूहिक रूप से बड़े पर्यावरणीय लाभ का आधार बन सकते हैं।

लेकिन केवल यह जान लेना पर्याप्त नहीं है कि हमें क्या करना चाहिए। वास्तविक चुनौती यह है कि हम अपने व्यवहार में बदलाव कैसे लाएँ। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए क्लाइमेट सत्याग्रह आश्रम की प्रशिक्षण व्यवस्था को तीन आयामों—Head, Heart और Hand—से जोड़ने की योजना है।

Head अर्थात मस्तिष्क। इस आयाम में जलवायु परिवर्तन के वैज्ञानिक पहलुओं को समझाया जाएगा। धरती का तापमान क्यों बढ़ रहा है, ऊर्जा की खपत और कार्बन उत्सर्जन का क्या संबंध है, प्राकृतिक संसाधनों की सीमाएँ क्या हैं और हमारी जीवनशैली पर्यावरण को किस प्रकार प्रभावित करती है—इन सबकी व्यवस्थित जानकारी दी जाएगी। व्यक्ति को केवल यह नहीं बताया जाएगा कि प्रदूषण कम करना चाहिए, बल्कि यह भी समझाया जाएगा कि प्रदूषण पैदा क्यों होता है और उसके पीछे हमारी कौन-सी गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं।

Heart अर्थात हृदय। ज्ञान और व्यवहार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हमारी आंतरिक चेतना और संवेदनशीलता है। हम जानते हैं कि पानी बचाना चाहिए, बिजली की बर्बादी नहीं करनी चाहिए और अनावश्यक खरीदारी से बचना चाहिए। फिर भी कई बार हम इन बातों को अपने जीवन में नहीं उतार पाते। इसका कारण यह है कि परिवर्तन के लिए केवल जानकारी नहीं, बल्कि भीतर से प्रेरणा भी आवश्यक है। आश्रम का यह आयाम व्यक्ति को आत्मचिंतन, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, इच्छाओं पर संयम और वास्तविक आवश्यकताओं की पहचान करने के लिए प्रेरित करेगा। यहाँ आध्यात्मिक दृष्टिकोण का उद्देश्य भी यही होगा कि व्यक्ति बाहरी सुविधाओं के साथ-साथ अपने आंतरिक संतुलन और संतुष्टि को महत्त्व देना सीखे।

Hand अर्थात हाथों से करके सीखना। यह इस प्रशिक्षण का सबसे व्यावहारिक पक्ष होगा। व्यक्ति केवल व्याख्यान सुनकर नहीं लौटेगा, बल्कि स्वयं अनुभव करेगा कि सीमित संसाधनों में जीवन कैसे जिया जा सकता है। प्राकृतिक और पर्यावरण-अनुकूल निर्माण, पानी और बिजली का विवेकपूर्ण उपयोग, स्थानीय संसाधनों का उपयोग, भोजन की व्यवस्था, कचरे को न्यूनतम करना और कम वस्तुओं के साथ सहज जीवन जीना प्रशिक्षण का हिस्सा बन सकते हैं। वहाँ रहने और खाने-पीने की व्यवस्था भी इसी जीवनशैली के अनुरूप विकसित की जाएगी। इस प्रकार आश्रम स्वयं एक ऐसी प्रयोगशाला बनेगा, जहाँ व्यक्ति कुछ समय रहकर उस जीवनशैली को अनुभव कर सकेगा जिसे वह बाद में अपने घर और समाज में अपना सकता है।

आश्रम के निर्माण में भी प्राकृतिक तरीकों को अपनाने की तैयारी चल रही है। प्रशिक्षण केंद्र को लगभग एक वर्ष के भीतर अपनी गतिविधियाँ शुरू करने की स्थिति में लाने का लक्ष्य है। इसका अर्थ यह है कि पूरा आश्रम भले ही आगे भी विकसित होता रहे, लेकिन प्रशिक्षण के लिए लोग वहाँ आ सकेंगे और इस जीवनशैली को सीखने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे। यह पहल केवल भवन बनाने की नहीं, बल्कि एक ऐसे विचार को स्थायी स्वरूप देने की है, जिसे देश-विदेश के लोगों तक पहुँचाया जा सके।

इस आश्रम की एक विशेष पहचान यह हो सकती है कि यहाँ पर्यावरण संरक्षण को केवल बाहरी गतिविधियों से जोड़कर नहीं देखा जाएगा। सामान्यतः हम प्रदूषण की चर्चा करते समय कारखानों, वाहनों, नदियों और जंगलों की बात करते हैं। लेकिन हमारे घरों, कार्यालयों, बाजारों और व्यक्तिगत जीवन में होने वाला अनावश्यक उपभोग भी उसी समस्या का हिस्सा है। जब तक व्यक्ति अपनी भूमिका नहीं पहचानेगा, तब तक पर्यावरण संरक्षण का अभियान पूर्ण नहीं हो सकता। इस दृष्टि से यह आश्रम व्यक्ति को समस्या का हिस्सा होने के साथ-साथ समाधान का सक्रिय भागीदार बनाने की दिशा में काम कर सकता है।

शिलान्यास समारोह ने इस विचार का एक व्यावहारिक उदाहरण भी प्रस्तुत किया। 850 से अधिक लोगों की सहभागिता तथा नाश्ते और दोपहर के भोजन की व्यवस्था के बावजूद आयोजन में 200 ग्राम से अधिक प्लास्टिक कचरा उत्पन्न न होने का प्रयोग सफल रहा। पुनः उपयोग योग्य बर्तनों और सामग्रियों को अपनाया गया तथा एकल उपयोग वाली प्लास्टिक से बचा गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि पर्यावरण-अनुकूल आयोजन केवल छोटे समूहों तक सीमित नहीं हैं। सही योजना और सामूहिक संकल्प से बड़े आयोजनों में भी कचरे को बहुत कम किया जा सकता है।

आज दुनिया के अनेक हिस्सों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को लेकर चिंता बढ़ रही है। ऐसे समय में केवल समस्या पर चर्चा करने वाले मंचों के साथ-साथ ऐसे प्रशिक्षण केंद्रों की भी आवश्यकता है, जहाँ समाधान को जीवन में अपनाने का अभ्यास कराया जाए। यदि नेमित गाँव का यह आश्रम वैज्ञानिक ज्ञान, आध्यात्मिक चेतना और व्यावहारिक जीवनशैली को एक साथ जोड़ने में सफल होता है, तो यह भविष्य में अपनी तरह का विशिष्ट वैश्विक प्रशिक्षण और प्रयोग केंद्र बन सकता है। इसकी पहचान केवल इसके निर्माण से नहीं, बल्कि यहाँ से प्रशिक्षण लेकर जाने वाले लोगों के व्यवहार में आने वाले बदलाव से बनेगी।

हमें यह भी समझना होगा कि कम उपभोग का अर्थ गरीबी, अभाव या सुविधाओं का त्याग नहीं है। इसका अर्थ है विवेकपूर्ण उपभोग। जो वास्तव में आवश्यक है, उसका उपयोग करें, लेकिन केवल दिखावे, प्रतिस्पर्धा या आदत के कारण संसाधनों को खर्च न करें। अधिक वस्तुओं के बजाय बेहतर स्वास्थ्य, अधिक ऊर्जा खर्च करने के बजाय ऊर्जा का विवेकपूर्ण उपयोग और अधिक खरीदारी के बजाय संतुष्ट जीवन को महत्त्व दें। संभव है कि भविष्य की वास्तविक समृद्धि इसी सोच से तय हो।

प्रो. चेतन सिंह सोलंकी की ऊर्जा स्वराज यात्रा छह वर्ष पूरे करके अपने सातवें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। इस यात्रा के अनुभव और चिंतन से निकला क्लाइमेट सत्याग्रह आश्रम अब उस विचार को एक स्थायी केंद्र देने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस पहल के पीछे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जलवायु परिवर्तन की जिम्मेदारी को दूसरों पर डालने के बजाय प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में बदलाव का निमंत्रण दिया जा रहा है।

आखिरकार, हमें अपने आप से कुछ सरल प्रश्न पूछने होंगे। क्या मुझे वास्तव में इतनी वस्तुओं की आवश्यकता है? क्या मैं अपनी यात्रा, खरीदारी, खान-पान और बिजली के उपयोग में कुछ बदलाव कर सकता हूँ? क्या मेरी सुविधाओं के लिए प्रकृति को अनावश्यक कीमत चुकानी पड़ रही है? और क्या मैं अपने परिवार को कम उपभोग के साथ अधिक संतुष्ट जीवन जीने की प्रेरणा दे सकता हूँ?

नेमित गाँव में रखी गई आश्रम की आधारशिला केवल एक निर्माण की शुरुआत नहीं, बल्कि समृद्धि की नई परिभाषा खोजने का प्रयास है। एक ऐसी परिभाषा जिसमें अधिक वस्तुओं का स्वामित्व नहीं, बल्कि कम संसाधनों में बेहतर जीवन जीने की क्षमता महत्त्वपूर्ण होगी। यदि यहाँ से सीखकर लौटने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कुछ अनावश्यक उपभोग कम करता है और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करता है, तो यह विचार धीरे-धीरे एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का आधार बन सकता है।

धरती सीमित है, लेकिन हमारी इच्छाएँ असीमित होती जा रही हैं। अब समय है कि हम अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करें। क्योंकि धरती को बचाने का अर्थ केवल प्रकृति को बचाना नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ, सुरक्षित और आनंदपूर्ण जीवन सुनिश्चित करना भी है।

सीमित धरती पर सीमित उपभोग, लेकिन सुख और संतुष्टि से भरपूर जीवन—शायद यही भविष्य की वास्तविक समृद्धि है।



बी.के. शिव अरोड़ा
मोबाइल: 96851 77066

उप्र की सियासत के साये में सिसकता सवर्ण स्वाभिमान

सत्ता की सीढ़ियों पर चढ़कर समाज को देखने वाली राजनीति ने उत्तर प्रदेश को हमेशा जातीय समीकरणों के चश्मे से देखा है और इस चश्मे में सवर्ण समाज की तस्वीर सबसे अधिक धुंधली, सबसे अधिक उपेक्षित और सबसे अधिक गलत ढंग से आंकित की गई है। यह वह समाज है जिसने इस प्रदेश की संस्कृति को भाषा दी, साहित्य को सृजन दिया, शिक्षा को परम्परा दी, न्याय को नैतिकता दी और स्वतंत्रता संग्राम को नेतृत्व दिया, किन्तु आज वही समाज अपने ही प्रदेश में अपने ही स्वाभिमान के लिए सिसकता हुआ दिखाई देता है। सियासत ने उसे कभी वोट बैंक नहीं माना, क्योंकि वह बँटकर वोट नहीं करता, वह विचार करके मतदान करता है और इसी विचारशीलता की उसे सबसे बड़ी सजा मिली है। जिस समाज ने कभी किसी से कुछ माँगा नहीं, उसी समाज को आज सबसे अधिक अनसुना किया जा रहा है। यह लेख किसी जाति या किसी समुदाय के विरोध में नहीं है, यह तो उस मौन अन्याय के विरुद्ध है जो संविधान की आड़ में, समानता के नाम पर और सामाजिक न्याय के नारे के नीचे निरंतर सवर्णों के साथ किया जा रहा है।

संविधान ने हमें समानता का वचन दिया था, किन्तु व्यवहार में समानता का अर्थ ही बदल दिया गया। संविधान की मूल आत्मा यह थी कि राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग अथवा जन्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा, किन्तु आज जन्म के आधार पर ही यह तय हो जाता है कि किसे अवसर मिलेगा और किसे अवसर से वंचित किया जाएगा। एक ही परीक्षा, एक ही मेरिट, एक ही योग्यता, किन्तु दो अलग-अलग कट-ऑफ, दो अलग-अलग अवसर और दो अलग-अलग भविष्य, यह कैसी समानता है? एक सवर्ण युवक जो रात-रात भर पढ़कर, माँ-बाप की गाढ़ी कमाई लगाकर, ट्यूशन और किताबों के बोझ तले दबकर परीक्षा देता है, वह जब कुछ अंकों से चयन से वंचित हो जाता है और उससे कम अंक पाने वाला उसका सहपाठी व्यवस्था की कृपा से चयनित हो जाता है, तो उसके मन में व्यवस्था के प्रति जो अविश्वास पैदा होता है, उसे कोई भी राष्ट्रवादी विचारक अनदेखा नहीं कर सकता। यह अविश्वास केवल एक युवक का नहीं है, यह एक पूरी पीढ़ी का मौन आक्रोश है। यह आक्रोश हिंसा नहीं चाहता, यह आरक्षण का विरोध नहीं करता, यह तो केवल इतना पूछता है कि योग्यता को कब तक दंडित किया जाएगा और जन्म को कब तक पुरस्कृत किया जाएगा। जब योग्यता हारती है, तो राष्ट्र हारता है और जब राष्ट्र की प्रतिभा पलायन करती है, तो इसका दोष उस प्रतिभा को नहीं, उस व्यवस्था को देखा जाना चाहिए जिसने उसे अपने ही देश में पराया कर दिया।

सवर्णों के साथ हो रहे संवैधानिक अन्याय का दूसरा सबसे बड़ा रूप आर्थिक आधार पर भेदभाव का अभाव है। गरीबी की कोई जाति नहीं होती, भूख का कोई वर्ण नहीं होता, बेरोजगारी का कोई गोत्र नहीं होता, किन्तु हमारे नीति-निर्माताओं ने गरीबी को भी जाति के खानों में बाँट दिया है। एक दलित गरीब, एक पिछड़ा गरीब और एक सवर्ण गरीब, तीनों की पीड़ा एक जैसी है, तीनों के आँसू एक जैसे हैं, तीनों के बच्चों की भूख एक जैसी है, फिर सहायता का पैमाना अलग-अलग क्यों है? सवर्ण गरीब के लिए न छात्रवृत्ति है, न शुल्क में छूट है, न छात्रावास में स्थान है, न नौकरी में संरक्षण है, न व्यवसाय के लिए विशेष योजना है। वह गरीब होकर भी गरीब नहीं माना जाता, क्योंकि उसके नाम के आगे एक विशेषण लगा दिया गया है, सवर्ण। क्या यही सामाजिक न्याय है कि गरीब को उसकी गरीबी के कारण नहीं, उसकी जाति के कारण सहायता से वंचित कर दिया जाए? आर्थिक रूप से कमजोर सवर्णों के लिए दस प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान एक स्वागत योग्य कदम अवश्य था, किन्तु व्यवहार में वह भी अनेक स्थानों पर कागजी रह गया है। प्रमाण-पत्रों की जटिलता, आय की अव्यावहारिक सीमा, नौकरियों में उसका अपूर्ण क्रियान्वयन और उच्च शिक्षा में उसका टकराव, इन सबने उस राहत को भी अधूरी कर दिया है। एक सवर्ण कल्याण की चिंता करने वाला विचारक यह मानता है कि सहायता का आधार गरीबी होना चाहिए, जाति नहीं और जब तक यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जाएगा, तब तक सामाजिक न्याय अधूरा ही रहेगा।

आज सवर्ण समाज को जिस सबसे गहरी पीड़ा से गुजरना पड़ रहा है, वह है उसे दोयम दर्जे का नागरिक मानने की मानसिकता। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सवर्ण नागरिक का कर्तव्य तो पूर्ण है, किन्तु अधिकार आधे हैं। उसे कर देना है, कानून मानना है, राष्ट्र की सेवा करनी है, सीमा पर बलिदान देना है, आपदा में सबसे आगे खड़ा होना है, किन्तु जब अधिकार की बात आती है, तो उसे पीछे धकेल दिया जाता है। उसके मंदिरों का चढ़ावा सरकार के नियंत्रण में है, किन्तु अन्य धर्मस्थलों की व्यवस्था को स्वायत्तता प्राप्त है। उसके पर्वों पर ध्वनि, जुलूस और आयोजन के लिए अनुमति की लंबी प्रक्रिया है, किन्तु अन्य आयोजनों के लिए वही कठोरता नहीं दिखाई देती। उसके महापुरुषों को पाठ्यपुस्तकों से धीरे-धीरे हटाया जा रहा है, उसके इतिहास को विकृत किया जा रहा है, उसकी परम्पराओं को पिछड़ापन कहकर उपहास उड़ाया जा रहा है। जब कोई सवर्ण अपनी पीड़ा कहता है, तो उसे जातिवादी कह दिया जाता है, जब वह अपने अधिकार की बात करता है, तो उसे सामंतवादी कह दिया जाता है और जब वह अपने स्वाभिमान की रक्षा करना चाहता है, तो उसे संविधान विरोधी कह दिया जाता है। यह कैसी विडम्बना है कि जिस समाज ने संविधान बनाने में सबसे बड़ी भूमिका निभाई, उसी समाज को आज संविधान के नाम पर ही चुप करा दिया जाता है।

इस पीड़ा की सबसे कड़वी सच्चाई यह है कि सवर्णों को आज राज्य की दृष्टि में केवल करदाता के रूप में देखा जा रहा है। सवर्ण समाज का एक बड़ा वर्ग व्यापारी है, किसान है, शिक्षक है, अधिवक्ता है, चिकित्सक है, उद्यमी है, नौकरीपेशा है, जो ईमानदारी से आयकर देता है, जीएसटी देता है, संपत्ति कर देता है, सड़क कर देता है और उसी कर से चलने वाली योजनाओं का लाभ उसे सबसे कम मिलता है। वह कर देता है तो सड़क बनती है, विद्यालय बनता है, छात्रवृत्ति बँटती है, आवास मिलता है, किन्तु जब वह स्वयं अपने बच्चे की फीस के लिए सहायता माँगता है, तो उसे बताया जाता है कि वह सामान्य वर्ग से है, इसलिए वह पात्र नहीं है। क्या राष्ट्र का निर्माण केवल कर देने वालों के कर्तव्य से होगा और लाभ लेने वालों के अधिकार से होगा? क्या यह न्यायसंगत है कि जो सबसे अधिक देता है, उसे सबसे कम मिले और जो सबसे कम देता है, उसे सबसे अधिक मिले? एक कल्याणकारी राज्य का यह दायित्व है कि वह करदाता के साथ कृतज्ञता का व्यवहार करे, न कि उसे शोषण का साधन समझे। सवर्ण करदाता आज यह पूछ रहा है कि क्या उसकी नागरिकता केवल कर चुकाने तक सीमित है। क्या उसके बच्चे का भविष्य, उसके बूढ़े माता-पिता की चिकित्सा, उसके परिवार की सुरक्षा, राज्य की चिंता का विषय नहीं है? यदि राज्य केवल लेने के लिए है और देने के लिए नहीं, तो नागरिक और राज्य के बीच का विश्वास टूट जाएगा और विश्वास टूटने पर कोई भी राष्ट्र नहीं टिक सकता।

उत्तर प्रदेश की राजनीति में सवर्णों की स्थिति और भी अधिक विचारणीय है। यहाँ हर दल को सवर्णों का वोट चाहिए, किन्तु कोई भी दल सवर्णों का नेतृत्व स्वीकार करने को तैयार नहीं है। चुनाव के समय सवर्ण चेहरों को मंच पर बिठाया जाता है, उनके कंधे पर हाथ रखा जाता है, उनके समाज के गौरव की चर्चा की जाती है, किन्तु चुनाव के बाद मंत्रिमंडल में, संगठन में, टिकट वितरण में, नीति निर्धारण में उन्हें हाशिए पर धकेल दिया जाता है। सवर्णों को केवल चुनावी समीकरण साधने का उपकरण बना दिया गया है, उनकी भावनाओं को केवल भाषणों का अलंकरण बना दिया गया है। जब कभी किसी सवर्ण नेता ने अपने समाज के हित की बात की, तो उसे जातिवादी कहकर अलग-थलग कर दिया गया और जब कभी किसी सवर्ण संगठन ने अपने अधिकारों की माँग की, तो उसे कानून-व्यवस्था का विषय बना दिया गया। यह राजनीति सवर्णों को नेतृत्वहीन करना चाहती है, क्योंकि नेतृत्वहीन समाज को आसानी से उपेक्षित किया जा सकता है। किन्तु सवर्ण समाज को यह समझना होगा कि उसका स्वाभिमान किसी दल की कृपा से नहीं, उसकी अपनी एकता, उसकी अपनी जागरूकता और उसकी अपनी वैचारिक स्पष्टता से सुरक्षित होगा। उसे किसी के विरुद्ध नहीं, अपने हक के लिए खड़ा होना होगा, उसे नफरत की राजनीति नहीं, न्याय की राजनीति करनी होगी।

इसलिए, अब समय आ गया है जब सवर्ण समाज के कल्याण को भी राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया जाए। इसके लिए सबसे पहले सवर्ण कल्याण आयोग का गठन किया जाए, जो सवर्ण गरीबों, सवर्ण युवाओं, सवर्ण किसानों और सवर्ण महिलाओं की समस्याओं का अध्ययन करे और सरकार को ठोस सुझाव दे। दूसरे, शिक्षा और नौकरी में आर्थिक आधार को वास्तविक आधार बनाया जाए, ताकि गरीब सवर्ण भी अवसर से वंचित न रहे। तीसरे, छात्रवृत्ति, शुल्क प्रतिपूर्ति और छात्रावास की सुविधाओं में गरीब सवर्णों को भी समान अवसर दिया जाए। चौथे, सवर्ण समाज के महापुरुषों, संतों, स्वतंत्रता सेनानियों और साहित्यकारों के योगदान को पाठ्यपुस्तकों में सम्मानजनक स्थान दिया जाए, ताकि आने वाली पीढ़ी को अपने गौरव पर लज्जा नहीं, गर्व हो। पाँचवें, करदाता के अधिकारों का एक घोषणापत्र बनाया जाए, जिसमें यह स्पष्ट हो कि कर देने वाला नागरिक भी राज्य की योजनाओं का समान भागीदार है। और सबसे महत्वपूर्ण, सवर्ण समाज को अपनी पीड़ा को आक्रोश में नहीं, आंदोलन में नहीं, बल्कि संकारात्मक संगठन में बदलना होगा। उसे अपने बच्चों को शिक्षा, संस्कार और संघर्ष की त्रिवेणी देनी होगी, ताकि वे योग्यता के बल पर ही अपनी जगह बना सकें, किन्तु व्यवस्था से न्याय की माँग भी करना न भूलें।

सत्ता आती-जाती रहेगी, समाज रहेगा, सियासत बदलती रहेगी, किन्तु स्वाभिमान यदि एक बार टूट गया, तो उसे जोड़ना कठिन होगा। सवर्ण समाज का स्वाभिमान किसी के दान से नहीं, उसके अपने त्याग, तप और तेज से बना है। वह समाज जो कभी दूसरों के लिए जीया है, आज अपने लिए न्याय माँग रहा है और यह माँग अनुचित नहीं है। यह माँग किसी के विरुद्ध नहीं है, यह माँग संविधान की मूल भावना के पक्ष में है, यह माँग समानता के पक्ष में है, यह माँग मानवता के पक्ष में है। उत्तर प्रदेश की राजनीति को यह समझना होगा कि सवर्णों को अनदेखा करके कोई भी सत्ता स्थायी नहीं हो सकती, क्योंकि जो समाज संस्कृति का रक्षक है, वही समाज लोकतंत्र का भी रक्षक है। सवर्णों का सिसकता स्वाभिमान आज मौन है, किन्तु मौन को कमजोरी समझने की भूल कोई न करे, क्योंकि जब स्वाभिमान जागता है, तो वह सत्ता का समीकरण ही नहीं, समाज की दिशा भी बदल देता है।



डॉ. शैलेश शुक्ला
आशियाना, लखनऊ - 226012, उत्तर प्रदेश मो.7 स्वाडू: 9312053330, 8759411563